IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय लोकधर्म में इन्द्र देवता की महत्ता

डॉ. पिंकी यादव
सह आचार्य,
इतिहास विभाग,
बाबूशोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

सारांश : भारत धर्मप्रिय देश है। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज के प्रबुद्धवर्ग में उच्च स्तरीय दार्शनिक विचारों का अस्तित्व रहा है तो दूसरी ओर जनसामान्य लौकिक देवों से अधिक घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। आर्य समाज में वैदिक काल में जहाँ यज्ञ–धर्म का बोलबाला था, वहीं सामान्यजन की अपनी धार्मिक मान्तयाएँ थी, जिन्हें लोकधर्म की संज्ञा दी जा सकती है। उत्तर वैदिक काल में लोक–धर्मों की चर्चा मिलती है। शिव–पूजा लोक में विस्तृत स्तर पर प्रचलित थी। अथर्ववेद के पापमोचन सूक्त में वैदिक देवों के साथ यक्ष, राक्षस, भूत, दिशा, नक्षत्र का उल्लेख है। इन्द्र भारत में सर्वाधिक प्राचीन देवता हैं। (लगभग 4000 ई.पू.) उनके नेतृत्व में देवों ने असुरों के कठोर साम्राज्य से छुटकारा पाया था। उन महान् पुरुष को स्मरण रखने के लिए देवों ने अपने नेता को इन्द्र की पदवी से पुकारना प्रारम्भ किया।

संकेताक्षर : इन्द्र, लोकदेवता इन्द्र, भगवान इन्द्र।

प्रस्तावना

लोकदेवता से तात्पर्य ऐसे महापुरुषों से हैं जो मानव जन्म से लेकर अपने असाधारण एवं लोकोपकारी कार्यों के कारण दैविक अंश के प्रतीक के रूप में स्थानीय जनता द्वारा स्वीकार किए गये और उन्हें देवतुल्य पूज्य माना गया। वैदिक देव इन्द्र भी ऐसे ही लोकप्रिय देव है जो प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय जनमानस के वंदनीय रहे हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकधर्म के महत्व को व्यक्त करते हुए कहा है कि– लोकधर्म हमारे जीवन का महासमुद्र है जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित है। अर्वाचीन मानव के लिए लोकधर्म सर्वोच्च प्रजापति है।' इस देश का लोक, इस देश की लोक संस्कृति अत्यन्त विलक्षण है। यहां अनगिनत देवता और अगिनत देवियां हैं। यहाँ का लोकधर्म और लोकसंस्कृति अत्यन्त विलक्षण है। इसे अतीतकाल का पुरातत्व, इतिहास, धर्म और जीवन मान कर तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ, महत्ता और प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है। भारत के इन नाना देवी–देवताओं में वैदिक देव इन्द्र ऐसा ही देव है जिनका अस्तित्त्व सनातन है, नित्य है, शाश्वत है। वैदिक काल का सर्वोच्च देव अपने वीरतापूर्ण कार्यों, लोकरक्षक और जनहितकारी सद्भावनों के कारण न केवल वैदिक काल में अपितु पौराणिक युग और बौद्धयुग में ही नहीं अपितु आज भी लोक में प्रिय हैं।[1]

इन्द्र के महात्म्य से सम्पूर्ण वैदिक साहित्य ओत–प्रोत है और जनता इस देवता को आदर से देखती है। अतएव बौद्धों ने इस लोकप्रिय देव को अहिंसक बनाकर सक्क के रूप में अपना लिया तो जैनों ने भी इन्द्र को देववर्ग में सम्मिलित कर लोकप्रिय देव के रूप में ग्रहण किया। बुद्ध के जन्म के समय इन्द्र तथा ब्रह्मा की उपस्थिति का वर्णन एवं महावीर सहित सभी चौबीस तीर्थंकरों के जन्मोत्सव को इन्द्र द्वारा आयोजित करवाना इनकी लोकप्रियता का सूचक है। दोनों ही धर्मों में इन्द्र की मान्यता समान है। बौद्धों एवं जैनों ने इन्द्र को लोक–प्रचलित महत्त्वपूर्ण देव के रूप में तो ग्रहण किया किन्तु पालि निकाय तथा जैनागम में इन्द्र को अर्हत या तीर्थंकर की अपेक्षा निम्न स्थिति प्रदान की गयी है तो दूसरी ओर उनके दैवीय गुणों के सम्बन्ध में उल्लेख है। इस तरह वैदिक देव इन्द्र ने अपनी लोकप्रियता से मुख्यधारा (वैदिक धर्म) के साथ–साथ लोक में प्रचलित जैन–बौद्ध धर्म में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया।

पालि निकाय ग्रंथों में इन्द्र को बुद्ध के नीचे स्थान देते हुए उसे बुद्ध का अनुचर या सेवक के रूप में दर्शाया गया है। विनयपिटक[2] में उल्लेख मिलता है कि एक रात्रि में दीप्तमान देवों का राजा शक्र आया और उसने भगवान का अभिवादन कर धर्म को सुना। बौद्ध धर्म में बुद्ध से निम्न स्थान होते हुए भी इन्द्र के भौतिक वैभव और दिव्य ऐश्वर्य में कमी नहीं है। वह तावतिंस लोक के देवताओं का नेता है और कौशिक उनका गोत्र है।

जैनागम में भी बौद्धों के समान प्रवृत्ति दिखाई देती है। जहां भी किसी तीर्थंकर की उपस्थिति है वहाँ इन्द्र को निम्न स्थिति प्रदान की गयी है, जबकि अन्य स्थलों पर सभी देवों एवं समाज में उनकी विशेष प्रतिष्ठा दिखायी गयी है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[3] में उल्लेख है कि देवताओं के प्रभु इन्द्र आकाश की तरह निर्मल वस्त्रधारी, मालाओं से युक्त मुकुट धारण किये हुए थे। उज्जवल स्वर्ण के सुन्दर चित्रित चंचल हिलते हुए कुण्डल से उनके कपोल सुशोभित थे। वे देदीप्यमान शरीरधारी, लम्बी पुष्पमाला पहने परम ऋद्धिशाली, परम धृतिशाली, महान् बली एवं महान् तपस्वी परम प्रभावक है। शक्र जब अपने आसन से चलायमान होते हैं तब अपने ज्ञान से सम्पूर्ण जगह की स्थिति जान लेते हैं।

बौद्ध एवं जैन आगमों द्वारा परिलक्षित इन्द्रपूजा के स्वरूप पर दृष्टिपात करने पर यह विदित होता है कि इसमें लोकजागृति और धार्मिक चेतना दोनों ही प्रवृत्तियों का समावेश था। इनका उत्सव लोक में प्रचलित था क्योंकि सामान्य लोगों का सौभाग्य समृद्धि कृषि पर आश्रित था जिसका आधारभूत तत्व अच्छी वृष्टि था। इन्द्र लोक में सर्वाधिक लोकप्रिय देव के रूप में बहुसंख्यक लोगों द्वारा पूजित थे और समाज का प्रत्येक वर्ग उनकी आराधना करता था। आज भी, इस वैज्ञानिक युग में इन्द्र वर्षण के देव के रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय देव हैं, समाज का प्रत्येक वर्ग उनसे सुवृष्टि के लिए उनको प्रसन्न करने हेतु यज्ञ–हवन का आयोजन करता है। देश के प्रत्येक क्षेत्र की लोकसंस्कृति में उनको वर्षण का देव मानकर आज भी लोकगीतों में उनसे पानी बरसाने की याचना की जाती है।

प्रचलित इन्द्रोत्सव

भारतीय साहित्य में वैदिक युग से ही उत्सवों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। वैदिक–वाङ्मय में उपलब्ध एतद्विषयक सामग्री से विदित होता है कि भारतीय आर्य बड़े उत्सव प्रेमी थे और वे समय–समय पर आनंद मनाने के लिए उत्सव–समारोहों का आयोजन किया करते थे। उत्तरकालीन साहित्य में उत्सव मनाने के वर्णन का अभाव नहीं दिखता। उत्सव के आयोजन में जनता के साथ राज्य के सक्रिय सहयोग के प्रमाण मिलते है। रामायण के अनुसार उत्सव तथा समाज राज्य की लोकप्रियता का सम्वर्द्धन करते है। कौटिल्य का कथन है कि राज्य को जनता के मनोरंजनार्थ यात्रा, समाज, उत्सव और प्रवहण का आयोजन करना चाहिए।[4] अशोक के अभिलेख समाज नामक उत्सव का उल्लेख करते है। समाज से उन दिनों धार्मिक अथवा सामाजिक समारोहों पर एकत्र होने वाले जनसमूह का बोध होता है। बौद्ध–पिटकों तथा जैन–सूत्रों से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में बड़ी धूम–धाम से धार्मिक एवं लौकिक उत्सव मनाये जाते थे। जैन–सूत्रों[5] से ज्ञात होता है कि उन दिनों लोग विभिन्न देवताओं, जैसे इन्द्र, स्कन्द, रूद्र, मुकुन्द आदि की पूजा तथा यक्ष, नाग, स्तूप, मंदिर, वृक्ष, नदी, सरोवर इत्यादि की पूजा के लिए समय–समय पर समारोहों का आयोजन करते थे।

इन्द्रोत्सव

लोक में प्रतिवर्ष समय–समय पर देवी–देवताओं से सम्बन्धित उत्सव हुआ करते थे। लोकधर्म से सम्बन्धित इन्द्र, यक्ष, नाग, भूत, प्रेत, जल, सूर्य–चन्द्र से सम्बन्धित उत्सव के अतिरिक्त अन्य लौकिक उत्सव भी धूमधाम से मनाएँ जाते थे। भारत जैसे देश के लिए वृष्टि का जो महत्व है उसके परिप्रेक्ष्य में इन्द्र की पूजनीयता स्वाभाविक ही थी। इन्द्रोत्सव लोक में प्रचलित महत्वपूर्ण उत्सव है जिसके माध्यम से जनमानस इन्द्र के प्रति श्रद्धा प्रकट करता है। वेदों में भी इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए 'सोमाभिषव' नाम का उत्सव अत्यन्त उत्साह से मनाया जाता है। यह उत्सव महान् व्यक्ति के महात्म्य को प्रदर्शित करने की लिए मनाया जाता था। इस उत्सव को प्रमह कहा जाता है, इस में सोमपान, भोजन और मांगलिक प्रवचन होते हैं।[6] देवासुर संग्राम में इन्द्र द्वारा असुरों को पराजित करने के बाद देवों द्वारा इन्द्र का अभिनन्दन करते हुए 'प्रमह' नामक विजयोत्सव मनाया गया।

प्राचीन साहित्य में इन्द्र–महोत्सव का कुछ इसी तरह उल्लेख मिलता है। पुराणों में इन्द्र को निर्विघ्न रूप से वृष्टि का देवता माना जाता है। वृष्टि होने पर ही भूमि फसल के उपयुक्त होती है तथा भूमि को उपजाऊ बनाने के कारण ही वर्षा का महत्व है। इस कारण पुराणों में वृष्टि के देवता के रूप में मान्य होने पर इन्द्र का उर्वरता से सम्बन्ध बढ़ना स्वाभाविक प्रतीत होता है। श्रीमद्भागवत पुराण और विष्णुपुराण में गोकुलपति नन्द द्वारा वृष्टि के देव के रूप में इन्द्र का पूजन और इन्द्रोत्सव मनाना इस तथ्य को प्रमाणित करता है। पौराणिक काल में प्रचलित नीराजनाद्वादशी, आंदोलक महोत्सव मदन–महोत्सव, दीपमालिका जैसे प्रमुख त्यौहारों के मध्य 'महेन्द्रध्वजात्सव' जो इन्द्रोत्सव के नाम से अधिक प्रसिद्ध है की भी गणना हुई है।[7] ऐसा माना जाता है कि सर्वप्रथम राजा उपरिचर ने इसे प्रचलित किया तथा बाद में अन्य राजा भी इसे मनाने लगे। यह उत्सव भाद्र शुक्ल द्वादशी को मनाया जाता था। घव, प्रियंगु, उदुम्बर, अश्वकर्ण, चंदन, आम्र अथवा साल वृक्ष की लकड़ी से

एक दण्ड, जिसकी नाप निश्चित थी, बनाया जाता था। इसे विभिन्न रंगों के वस्त्रों से अलंकृत किया जाता था। यह उत्सव नगरों, ग्रामों तथा खेतों में मनाया जाता था।

रामायण और महाभारत काल में यह उत्सव राज–प्रासादों से निकलकर जनसामान्य में प्रचलित हो गय। यहां पर भी इस उत्सव का सम्बन्ध विजय की अपेक्षा उर्वरता से अधिक है। रामायण में दो स्थानों पर स्पष्ट रूप से 'इन्द्रध्वज' का उल्लेख मिलता है–'उत्थितौ तौ नरव्याधौ प्रकाशेते यशस्विनौ। वृषतिपपरिग्लानौ पृथगिन्दध्वजाजिव।।' (अयोध्या, 77/25), 'ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितौ कृतौ। ध्वाजविव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ।।'–युद्ध., 47/17

रामायण में 'इन्द्रध्वज' उत्सव के आयोजन का उद्देश्य मिलता है। अश्विन पूर्णिमा के सात दिन पूर्व इन्द्रध्वज को खेत में स्थापित कर सामान्य जन द्वारा नृत्य–गीत, आमोद–प्रमोद किया जाता था।[8] महाभारत[9] में 'इन्द्रमह' पीछे राजा वसु तथा इन्द्र का आख्यान वर्णित है यथा श्एक बार देवेन्द्र ने चेदिराज वसु को दर्शन दिया क्योंकि राजा धर्मपरायण एवं कर्त्तव्यनिष्ठ थे। इसलिए इन्द्र ने राजा को एक दिव्य विमान, कभी न सूखने वाली पुष्पों की वैजयन्ती माला एवं वैष्णवी यष्टि दी। ऐसी मान्यता थी कि इस ध्वजपूजन से जनता सुखी एवं समृद्ध होती थी, साथ ही राष्ट्र का उन्नयन एवं युद्ध में शत्रु राजा पर विजय प्राप्त होती थी। शक्रोत्सव के प्रतीक यष्टि को पिटक, सुगन्धित पदार्थ एवं माल्यादि से अलंकृत कर राजा उठाते थे और विधिपूर्वक पूजन करते थे। यह यष्टि बत्तीस हाथ या अड़तीस फुट की होती थी।[10]

आवश्यकचूर्णि[11] के अनुसार इन्द्रमह उत्सव का प्रारम्भ चक्रवर्ती भरत द्वारा किया गया था। इन्द्र ने भरत को अपनी अलंकृत अंगुठी दी और भरत ने उसे स्थापित कर आठ दिन तक पूजन किया, तत्पश्चात् इन्द्रध्वज या शक्रध्वज की पूजा अर्चना की। उत्तराध्ययन टीका[12] में भी उल्लेख मिलता हैं कि इन्द्रध्वज या इन्द्रकेतु को मांगलिक ध्वनि के साथ श्वेत पताकाओं, छोटी–छोटी घण्टियों, श्रेष्ठ पुष्प एवं मणिमालाओं तथा विविध प्रकार के फलों से युक्त कर स्थापित किया जाता था। इस पूजा के अवसर पर नर्तकी नृत्य करती थी, कवि काव्यपाठ करते थे। तांत्रिक इन्द्रजाल का प्रदर्शन करते थे। पूजास्थल पर सुगन्धित जल का छिड़काव किया जाता था। सात दिन तक उत्सव को आयोजित कर फूल एवं वस्त्र द्वारा इन्द्रकेतु की पूजा की जाती थी। इस अवसर पर दान कर्म भी सम्पादित होता था। निशीथचूर्णि[13] में इन्द्रोत्सव आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन सम्पन्न करने का उल्लेख है। 'बृहत्कल्पभाष्य' में उल्लेख मिलता हैं कि इस अवसर पर नगर की कुलीन बालायें इन्द्रध्वज के चतुर्दिक बैठकर पुष्प एवं धूप द्वारा पूजन अर्चन करती थी। इन्द्रोत्सव के अवसर पर बनायी गयी खाद्य–सामग्री को लोग प्रतिपदा के दिन खाते थे। उत्सव के दिन लोग धुले हुए स्वच्छ वस्त्र पहन कर आपस में मिलकर सत्तू भोज करके नाच–गान के साथ आमोद–प्रमोद मनाते थे।

नाट्यशास्त्र[14]में भी इन्द्र–पूजन और इन्द्रोत्सव का विस्तार से उल्लेख मिलता है। इन्द्रोत्सव सम्पादित करने के लिए 'जर्जर' जो बांस का बना होता है, वर्णन मिलता है। बाँस की उत्पत्ति स्थल श्वेत भूमि तथा पुष्य नक्षत्र का होना शुभ बताया गया है। जर्जर के बाँस की माप एक सौ आठ अंगुली एवं पाच पर्व का निश्चित था। वह बाँस ग्रंथि, शाखा, कृमि या कीड़ा रहित हो तथा उसका पर्व भी नष्ट ना हो। इस बाँस को सरसों से मिश्रित मधु एवं घी के लेप तथा माला एवं धूप आदि से अर्चन कर पूजा स्थल पर रखा जाता था। तत्पश्चात् इस बाँस

को पृथ्वी में गाड़कर धूप, दीप माला आदि से उसकी पूजा कर मंत्र सहित विधिपूर्वक बलि दी जाती थी। जर्जर को इन्द्र का शस्त्र, असुर–दानवों का नाशक, सभी विघ्नों का निवारक, गौ, ब्राह्मण का हितकारी तथा संवर्द्धनकारी भी कहा गया है। यह उत्सव वर्षा ऋतु की समाप्ति पर शरदोत्सव के रूप में मनाया जाता था। नाटक का प्रारम्भ सर्वप्रथम इन्द्रोत्सव के समय हुआ था। दैत्यों द्वारा नाटक में विघ्न डालने पर इन्द्र ने ध्वज की यष्टि से उनको मार भगाया।

बृहत्संहिता[15] में इन्द्रोत्सव में इन्द्रपूजा एवं जन उल्लास दोनों का समावेश दिखाई देता है। ग्रंथानुसार इन्द्रध्वज पूजन से राजा के बल की वृद्धि होती है। इन्द्रध्वज निर्माण के लिए काष्ठायन का उल्लेख भी मिलता है। हम काष्ठ के लिए सूर्योदय के समय उत्तर दिशा अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख कर वृक्ष को काट कर शिरोभाग में चार अंगुल एवं मूल भाग से आठ अंगुल काट कर इसके मध्यभाग को जल में डाल दिया जाता था। तत्पश्चात् शुभ दिन भाद्रशुक्ल अष्टमी को उसे वस्त्र, माला, धूप–गंध से युक्त कर शंखादि वाद्य निनादित कर ज्योतिष, विप्र एवं राजा के साथ नगर में प्रविष्ट कराया जाता था। इन्द्रध्वज के साथ शक्रकुमारी का भी वर्णन मिलता है, इनकी संख्या पाँच या सात होती थी। इनका नाम नन्दा, उपनन्दा, जया, विजया, वसुन्धरा उल्लेखित है। छत्रपताका, दर्पण, फल, अर्धचन्द्र आकृति की माला कदली एवं इक्षु के दण्डव्याल से अलंकृत राजा फल, दधि, जल, मधु एवं पुष्प लेकर ध्वज की अर्चना करते हुए पुरवासियों के साथ शत्रु नगर को पराभूत करने की कामना से झुकाता था। यह उत्सव श्रावण नक्षत्र में द्वादशी के दिन सम्पन्न होता था। उत्सव के पांचवे दिन राजा ध्वजपूजन के पश्चात् उसका विसर्जन कर देता था।

तमिल ग्रंथ 'शिल्पदिकारम' में भी इन्द्रपूजा या इन्द्रोत्सव के संकेत मिलते है। इस उत्सव का आयोजन राजा अपने संरक्षण में भव्य रूप से करवाता था। यह वार्षिक उत्सव लगभग अट्ठाईस दिन तक चलते हुए चौत्र पूर्णिमा को समाप्त होता था। इस दिन इन्द्र की विशेष पूजा होती थी। सर्वप्रथम इन्द्र द्वारा पुहार के राजा की सहायतार्थ भेजे गये देव की अराधना की जाती थी तत्पश्चात् पुहार नगर के पाँच अलग–अलग मन्नम में मुचकान्त (गला काटने वाला) बलि कर्म का सम्पादन करता था। इस उत्सव का मुख्य आकर्षण ढोल या नगाड़ा को वज्रकोट्टम से हटाकर ऐरावत मंदिर ले जाया जाता था जो इन्द्र का प्रिय हाथी है। फिर हाथी के गले के निचले भाग में नगाड़ा बांध दिया जाता था। सम्भवतः महावत हाथी पर बैठकर नगाड़े को बजाता था। इन्द्र का स्नानकर्म इन्द्रोत्सव का मुख्य दिन है। प्रायः पुहार के सभी लोग इस त्यौहार को हर्षोल्लास के साथ मनाते है।

बौद्ध जातक में कर्षणोत्सव का उल्लेख मिलता है। कृषि से संबंधित यह उत्सव भी इन्द्र से जुड़ा हुआ है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। मनुष्य हल–जोतकर अन्न की उपज करता है। अतः इस उत्सव की शुरूआत राजा स्वयं हल जोतकर करता है। खेती से सम्बन्धित होने के कारण इसे कर्षणोत्सव कहा जाता है। वर्षाकाल के प्रारम्भ में पृथ्वी का पूजन करके हल–चलाना आरम्भ किया जाता था। मिथिला में दुर्भिक्ष पड़ने पर राजा जनक ने स्वयं स्वर्ण निर्मित हल से कर्षण कार्य प्रारम्भ किया। सांख्यायन गृहसूत्र[16] के अनुसार कर्षण का कार्य रोहिणी नक्षत्र में होना चाहिए। पारस्कर गृहसूत्र[17] के अनुसार पृथ्वी सीता है, इन्द्र पत्नी है। अतरू सीता की पूजा होनी थी और लोग वर्षा के लिए इन्द्र का आह्वान करते थे। इस प्रकार पालि–निकाय तथा समकालीन धर्मशास्त्र में

उपलब्ध सामग्री से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में वर्षा के आरम्भ में कृषिकार्य का श्रीगणेश करने के लिए महोत्सव की प्रथा प्रचलित थी।

निष्कर्षतः इन्द्र वैदिक युग का प्रथम देवता थे। उन्हें देवताओं के राजा (देवराज) के रूप में स्मरण किया जाता था। ऋग्वेद के लगभग एक चौथाई मंत्रों में उनका उल्लेख है। इससे उनके महत्त्व और व्यापक प्रभाव का पता चलता है। उन्हें कहीं पर संज्ञावत का देवता बताया गया है जो बादलों में गर्जन और बिजली पैदा करते हैं। कहीं पर उन्हें सूर्य देवता माना गया है। परंतु उसका मुख्य महत्त्व देवताओं को विजयी बनाने के कारण है। यह विजय वह प्राकृतिक शक्तियों को अनुकूल बनाकर दिलाता है।

संदर्भ

1 अग्रवाल, वासुदेवशरण, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृथिवी प्रकाशन, 1964, पृ. 4
2 सांकृत्यायन, राहुल, विनयपिटक, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 90
3 मुनि, मधुकर, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 2006, पृ. 286
4 अर्थशास्त्र, सम्पादक थॉली, 1–21
5 जैकोबी, जैनसूत्र,, सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट सीरीज, जिल्द 22, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2008, पृ. 92
6 पण्डित मधुसूदन, इन्द्रविजय, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2001, पृ. 436
7 देवी पुराण, 71,133,139–140 अध्यायों में क्रमशः इन उत्सवों का वर्णन प्राप्य है।
8 व्यास, नानूराम एवं शांतिकुमार, रामायण कालीन संस्कृति, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1988, पृ. 67
9 महाभारत, आदिपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1956–1959, सूत्र 15–27
10 अग्रवाल, वासुदेवशरण, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृथिवी प्रकाशन, 1964, पृ. 30
11 आवश्यकचूर्णि–2, पृ. 189
12 उत्तराध्ययन टीका, 9, पृ. 136
13 निशीथ चूर्णि, 16.60.65
14 नाट्यशास्त्र, मधुसूदन शास्त्री, पृ. 213
15 बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजस्यम्पदध्याय, 32, पृ. 20–58
16 सांख्यायन गृहसूत्र, 4/13
17 पारस्कर गृहसूत्र, 2/17/9